जीवन का दिव्य गुण शील

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

जीवन में शील और सदाचार का बहुत बड़ा महत्व है। सदाचारी व्यक्ति ही शीलवान होता है। शील को ब्रह्मचर्य भी कहा जाता है। शील स्त्री की लज्जा है। जीवन में ब्रह्मचर्य का एहसास होता है तो आन्तरिक शक्ति बढ़ती है। ब्रह्मचर्य से क्या लाभ है? यदि इस बात को देखा जाये तो आत्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य है। भोजन से रक्त, मेद और वीर्य बनता है। जो शीलवन्त होता है वह शक्तिशाली बनता है। शील साधना, तपस्या और शक्ति है। मनुष्य की इन्द्रियां अधिकांश बाह्य विषयों में ही लगी रहती हैं। इन्द्रियां मनुष्य को भटका देती हैं। इन्द्रियां जब अन्दर की और होती हैं तब वह ठीक है। इन्दियां जब आत्मनियन्त्रित होती हैं तो आन्तरिक शक्ति और ऊर्जा बढ़ती है। स्थूल भद्र ने कोशा वेश्या को अपने शील के प्रभाव से साध्वी बना दिया था। वेश्या का संसर्ग उन्हें अपनी तरफ आकर्षित नहीं कर सका। उन्होंने अपने वैराग्य से शील को नियन्त्रित किया। संन्यासी को जीवन पर्यन्त शील का संरक्षण करना पड़ता है। कंचन कामिनी का त्याग करने के बाद ही कोई व्यक्ति संन्यास के मार्ग पर चलने का व्रत लेता है। गृहस्थ को भी शील संरक्षण की भावना करनी चाहिए। यदि गृहस्थ स्वदार संतोष करता है तो वह भी शीलवान ही कहा जायेगा। शील को नियन्त्रित करने के लिए भारतीय संस्कृति में विवाह संस्कार को महत्व दिया गया है। समाज की मर्यादा और सुव्यवस्था बनाये रखने के लिए स्त्री और पुरुष के बीच वैवाहिक संस्कार किया जाता है। इस संस्कार के द्वारा स्त्री और पुरुष एक मर्यादा में बंध जाते हैं। सृष्टि का संचालन करने के लिए विवाह आवश्यक है। चार पुरुषार्थो में गृहस्थ आश्रम में स्त्री और पुरुष में गृहस्थी को चलाने के लिए विवाह का सम्बन्ध किया जाता है।

शील का ऊर्ध्वगमन करना चाहिए। इससे कुण्डलिनी जागरण होता हैं। रीढ़ की हड्डी का निचला भाग शक्ति केन्द्र कहलाता है। शक्ति केन्द्र में सारी ऊर्जा संचित रहती है। सामान्य व्यक्ति इस शक्ति को अनावश्यक रूप से व्यय कर देता है। किन्तु संयमी व्यक्ति उस शक्ति

को ऊंचा उठाकर ब्रह्मरन्ध्र में स्थापित कर लेता है। यद्यपि यह क्रिया कठिन है किन्तु बार–बार के अभ्यास से यह क्रिया संभव हो जाती है। धीरे–धीरे कामभोगों की भावना नष्ट होती जाती है। कोई भी ब्रह्मचारी इसका पालन कर सकता है। इससे ज्ञान बढ़ता है। ऋद्धि और सिद्धि की प्राप्ति होती है। ऐसा व्यक्ति महापुरुष कहलाता है। आज के परिदृश्य में यदि देखा जाये तो प्रायः ज्ञात होता है कि कही पर बलात्कार हो रहा है, कही पर किसी की इज्ज्त लूटी जा रही है, ऐसा क्यों? ऐसा इसलिए हो रहा है कि आज का युवा दिग्भ्रमित हो गया हैं। उसकी काम भावना पर नियन्त्रित करने की शक्ति पूरी तरह क्षीण हो गयी है। युवा पीढ़ी को स्वदार संतोष करना चाहिए। काम शरीर की आवश्यकता है। लेकिन सामाजिक मर्यादा में रहकर यदि काम भावना की पूर्ति होती है तब तो वह ठीक है। यदि सामाजिक नियमों को तोड़कर काम भावना को बढ़ाया जाता है तो यह ठीक नहीं।

भारतीय जीवन दर्शन में सदाचार का बहुत महत्व है। सदाचार का अर्थ है– अच्छा आचरण। हमारा आचरण ऐसा होना चाहिए जिससे किसी को किसी प्रकार का कष्ट न हो। भारतवर्ष आचार प्रधान देश है। यहां आचार की महत्ता प्राचीन काल से ही मान्य रही है। आचार सम्पन्न व्यक्ति का ही जीवन परिष्कृत एवं व्यवस्थित होता है। आचार के आधार पर अवलम्बित विचार जीवन का परिष्कारक होता है। शिष्ट व्यक्तियों द्वारा अनुमोदित एवं बहुमान्य रीतिरिवाजों को आचार कहते हैं। अतीतकाल में आचार शब्द बिना किसी विशेषण के भी श्रेष्ठतम आचरण के लिये प्रयुक्त हुआ है। शाब्दिक दृष्टि से आचार का अर्थ है–'आचरणम् आचारः'। मनुष्य का जो आचरण है, वही आचार है। यह सदाचार का द्योतक है। सदाचार का विरोधी कदाचार है। सदाचार यदि अनुष्ठेय है तो दुराचार हेय है। दुराचार मानव के पतन का प्रमुख कारण है। इसलिये यह सर्वतोभावेन त्याज्य है। सदाचार से मनुष्य प्रेय के साथ–साथ श्रेय को प्राप्त करता है, किन्तु कदाचार से किसी प्रकार प्रेय का लाभ हो भी जाय, तो भी वह अधोगति का मूलकारण होता है। सदाचारी आचार का पालन करते हुये श्रेयस् को प्राप्त करता है, और अन्त में परमगति को प्राप्त करता है–'आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्। उपनिषदों में भी श्रेय और प्रेय का वर्णन है, किन्तु श्रेय को श्रेयस्कर माना गया है–

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत–स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।

श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते।।

श्रेय और प्रेय दोनों ही मनुष्य के सामने आते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य उन दोनों के स्वरूप पर भलीभांति विचार करके उनको पृथक्–पृथक् समझ लेता है। बुद्धिसम्पन्न मनुष्य परमकल्याण के साधन श्रेय को ही श्रेष्ठ समझकर ग्रहण करता है, परन्तु मन्द बुद्धि मनुष्य लौकिक योगक्षेम की इच्छा से भोगों के साधन रूप प्रेय को अपनाता है। शील को सदाचार के नियन्त्रण में रहना चाहिए। यदि शील सदाचार के नियन्त्रण में रहता है तो उच्छृंखलता नहीं आती। आत्मशक्ति का प्रभाव बढ़ता है। आत्मशक्ति का प्रभाव बढ़ने से सभी स्त्रियों में मातृत्व की भावना पनपती है। जिस साधक में यह भावना जागृत हो जाती है वह महान साधक कहलाता हैं। जो साधक शील को नियन्त्रित नहीं कर पाता उसका पतन हो जाता है और उसके चरित्र के नष्ट हो जाने से उसका कोई मूल्य नहीं रहता।